THE HINDU

Date: 13-04-26

Tourism and trade

Consensus is vital in leveraging the strategic importance of Nicobar

Editorial

The Union government's ₹92,000 crore mega-infrastructure project for the holistic development of the Great Nicobar Island (GNI) by building it up as a port and tourism-led economy has gathered speed in the last six months, even as concerns remain about its impact on the Island's ecology and the rights of local populations, the Nicobarese and the Shompen — two indigenous tribal groups. The Andaman and Nicobar Islands administration has notified a draft master plan for the project. Apart from the International Container Transhipment Port (ICTP), the airport, and power plants, the draft master plan envisions developing the GNI as a "seaside destination in a pristine, unspoilt, protected environment", outlining plans for business, adventure, biodiversity tourism, family entertainment, amusement parks, etc., along with adequate social infrastructure for healthcare, education, and livelihood. The draft is planned for a projected population of over 3.36 lakh by 2055, by which time the expected tourist inflow will be a million a year. Over 70% of the direct employment the government hopes to create will be in tourism and allied sectors. The current population of the GNI is a little less than 10,000. This transformation of the GNI, aided by the ICTP, is crucial to leverage the "strategic importance" of the Island's location at the western entrance to the Malacca Strait. The draft plan has said the port will help India achieve its "aims to capture a significant share in global sea trade".

But while the administration has sought public suggestions and objections for 30 days, it remains unclear till when this window will remain open, given that the draft does not mention when it was notified. This draft plan follows another draft plan to relocate local Nicobarese communities to make way for the project. The two plans seemingly contradict each other with regard to where existing populations may be relocated, which has renewed fears among these groups. These communities have been opposing the project's clearance since 2022, alleging that their forest rights had not been settled. While the National Green Tribunal has set aside concerns about the project's impact on the GNI's biodiversity by citing its "strategic importance", a challenge to the project's clearances remains in the Calcutta High Court. Some have also questioned the project's commercial and naval merits. Considering that the project aims to irreversibly alter the demography, and ecology of the GNI, the most prudent path for the government is to take the time needed to build a more holistic consensus over it.

दैनिक जागरण

Date: 13-04-26

विफल वार्ता के दुष्परिणाम

संपादकीय

जैसी आशंका थी वैसा ही हुआ, ईरान और अमेरिका के बीच इस्लामाबाद में 21 घंटे तक चली वार्ता विफल हो गई। इसका कारण दोनों पक्षों का अपने रवैये से टस से मस न होना रहा। जहां अमेरिका हर हाल में यह सुनिश्चित करना चाहता था कि ईरान परमाणु हथियार बनाने का इरादा छोड़े, वहीं ईरान न तो इसके लिए तैयार था और न ही अपनी इस जिद को छोड़ने के लिए कि होर्मुज समुद्री मार्ग पर उसका आधिपत्य रहना चाहिए। साफ है कि वार्ता में ईरान ने भी अड़ियल रवैये का परिचय दिया।

वह परमाणु हथियारों से लैस हो, इसे कोई भी नहीं चाहता-अमेरिका और इजरायल तो कदापि नहीं। इसकी अनदेखी न की जाए कि ईरान इजरायल को दुनिया के मानचित्र से मिटाने की बात करता रहता है और उस पर हमले करने वाले हमास, हिजबुल्ला सरीखे आतंकी संगठनों को हर तरह का सहयोग-समर्थन देता है। ईरान का यह दावा झूठा है कि उसका परमाणु कार्यक्रम नाभिकीय हथियारों के निर्माण के लिए नहीं है, क्योंकि उसके पास इसका कोई जवाब नहीं कि वह तय सीमा से कहीं अधिक यूरेनियम संवर्धन क्यों कर रहा है?

यदि वह परमाणु हथियारों से लैस हुआ तो पश्चिम एशिया में दादागीरी तो दिखाएगा ही, इजरायल के अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा भी बनेगा। विश्व को यह भी स्वीकार नहीं हो सकता कि वह होर्मुज को अपनी निजी जागीर समझे। अंतरराष्ट्रीय नियमों के अनुसार इस जलमार्ग पर उसका एकाधिकार नहीं। यदि ईरान के लिए यह आवश्यक है कि वह होर्मुज और यूरेनियम संवर्धन पर अपना हठ छोड़े तो अमेरिका को भी वहां सत्ता परिवर्तन कराने के अपने अतिवादी विचार का परित्याग करना होगा।

अमेरिका-ईरान के बीच वार्ता विफल होना पश्चिम एशिया के लिए ही नहीं, पूरी दुनिया के लिए निराशा और चिंता का कारण है। इस वार्ता की विफलता के बाद ट्रंप ने जिस तरह होर्मुज की नाकेबंदी करने और वहां से एक भी जहाज न निकलने देने की धमकी दी, वह तो ऊर्जा संकट को और खतरनाक स्थिति में ले जाने वाली बात है। उनकी यह धमकी भारत के लिए भी गंभीर चिंता का विषय है, क्योंकि हमारे कुछ जहाज किसी तरह तेल और गैस लेकर वहां से निकल पा रहे थे।

लगता है ट्रंप चाहते हैं कि होर्मुज को लेकर पूरी दुनिया ईरान पर दबाव बनाने के लिए अमेरिका के साथ खड़ी हो। जो भी हो, अमेरिका-ईरान जिस तरह अपने रवैये पर अडिग हैं, उससे चंद दिनों पहले थमा 40 दिन पुराना युद्ध नए सिरे से शुरू होने की आशंका बढ़ गई है। यदि युद्ध नए सिरे से छिड़ता है तो अमेरिका ईरान पर कहीं अधिक भीषण हमले करेगा। इसके नतीजे में वह होर्मुज से अपना नियंत्रण खो सकता है। अच्छा होगा कि दोनों पक्ष युद्धविराम पर नए सिरे से कुछ नरम रवैये के साथ पुन: वार्ता की संभावनाएं टटोलें।

Date: 13-04-26

कूटनीति पर भारी पड़ी भरोसे की कमी

हर्ष वी. पंत, (लेखक आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में उपाध्यक्ष हैं)

इस्लामाबाद में अमेरिका-ईरान की वार्ता पर पूरी दुनिया की निगाहें टिकी थीं, लेकिन इसके परिणाम सकारात्मक नहीं रहे। इस वार्ता का विफल होना राजनयिक कुप्रबंधन कम, बल्कि उस बुनियादी जड़ता को ही अधिक रेखांकित करता है, जो आज भी दोनों देशों के संबंधों को परिभाषित करती है। दोनों पक्षों के वरिष्ठ नेतृत्व की मौजूदगी और उच्चस्तरीय संपर्क के बीच यह वार्ता अतिवादी मांगों, गहरे अविश्वास और असंगत रणनीतिक दृष्टिकोण के बोझ तले दबी रही।

इस्लामाबाद वार्ता का परिणाम प्रक्रिया की विफलता नहीं, बल्कि गतिरोध से भरी उन परिस्थितियों का ही एक पूर्वानुमानित परिणाम रही, जिन परिस्थितियों को बदलने के लिए दोनों ही पक्षों में न तो कोई सक्षम दिख रहा था और न ही इसके लिए तैयार। इस गतिरोध का एक अहम पहलू है परमाणु हथियारों को लेकर ईरान का मोह। स्वाभाविक है कि ईरान यह मोह नहीं छोड़ना चाहता। वहीं अमेरिका का स्पष्ट रुख है कि ईरान को न केवल परमाणु मोर्चे पर हुई प्रगति को पीछे छोड़ना होगा, बल्कि उस तकनीकी क्षमता से भी वंचित होना पड़ेगा जो भविष्य में उसे परमाणु शक्ति से संपन्न करने में सहायक बने। परमाणु की यह पहेली ईरान के लिए उसकी संप्रभुता का सवाल बन गई है।

वार्ता के दायरे और महत्वाकांक्षाओं को लेकर उपजे मतभेदों ने भी इसे और जटिल बना दिया। अमेरिका जहां परमाणु प्रतिबंध और होर्मुज जलमार्ग में स्वतंत्र एवं मुक्त आवाजाही जैसे सीमित उद्देश्यों के साथ वार्ता की मेज पर आया, वहीं ईरान का एजेंडा कहीं अधिक व्यापक था। ईरान केवल तनाव घटाने की मांग के साथ ही सामने नहीं आया, बल्कि उसने पश्चिम के साथ अपने संबंधों के नए सिरे से संयोजन की मांग रखी। इस पुनर्संयोजन में प्रतिबंधों से राहत, जब्त की हुई परिसंपत्तियों तक निर्बाध पहुंच, हालिया सैन्य हमलों से हुए नुकसान की भरपाई का मुआवजा और एक व्यापक क्षेत्रीय युद्धविराम शामिल था, जिसमें हिजबुल्ला जैसे सहयोगियों के खिलाफ इजरायली सैन्य कार्रवाइयों पर रोक भी शामिल थी। वार्ता के इस ढांचे में मौजूद विसंगतियों ने पहले से ही सुनिश्चित कर दिया कि बात नहीं बनने वाली। जहां वाशिंगटन इसे एक तात्कालिक संकट के रूप में देखते हुए फौरी राहत पर जोर दे रहा था तो तेहरान को यह अपने समीकरणों को नए सिरे से तय करने का अवसर महसूस हुआ। यानी अमेरिका बस आग को बुझाना चाहता था और ईरान की मंशा अपने क्षतिग्रस्त भवन के नए सिरे से निर्माण की थी।

दोनों पक्षों के बीच होर्मुज जलमार्ग एक अहम बिंदु बन गया है। अमेरिका और उसके सहयोगियों के लिए इस जलमार्ग के माध्यम से ऊर्जा आपूर्ति के निर्बाध प्रवाह को सुनिश्चित करना एक रणनीतिक आवश्यकता है। इसीलिए वाशिंगटन का आग्रह रहा कि परस्पर विश्वास बहाली के लिए इसे तुरंत खोला जाए। जबकि तेहरान का जोर व्यापक समझौते को अमल में लाने पर था। देखा जाए तो ईरान ने अपनी अपेक्षाकृत कमजोर सैन्य ताकत और आर्थिक कमजोरियों के मुकाबले होर्मुज की भौगोलिक स्थिति को अपनी रणनीतिक ढाल के रूप में इस्तेमाल कर इस संघर्ष में संतुलन का प्रयास किया

है। उसका संदेश स्पष्ट है कि ईरान के हितों को कुछ टुकड़ों में नहीं, बल्कि समग्रता में देखना होगा। इस संदर्भ में होर्मुज जलमार्ग एक सामुद्रिक परिवहन एवं ढुलाई से अधिक एक बड़ी भू-राजनीतिक सौदेबादी का औजार बन गया है।

बातचीत की विफलता के बाद आरोप-प्रत्यारोप का दौर चालू हो गया है। परस्पर दोषारोपण का यह दौर किसी पुराने नासूर का प्रतीक है। जहां अमेरिकी अधिकारियों ने ईरान के प्रस्तावों को अपर्याप्त और गंभीरता के अभाव से ग्रस्त बताया तो ईरानी प्रतिनिधियों ने वाशिंगटन पर भली मंशा के बिना हद से ज्यादा और अवैध मांगें थोपने का आरोप लगया है। ये आरोप किसी वाक् युद्ध से अधिक उस रुझान को ही दर्शाते हैं जिसके कारण अतीत की वार्ताएं भी पटरी से उतरती आई हैं। इसमें 2025 और 2026 में ओमान की मध्यस्थता में विफल वार्ताओं का दौर भी शामिल है। इन कूटनीतिक प्रयासों पर संदेह की बदलियां ही छाई रहीं और हर पक्ष दूसरे पर बुरी मंशा का आरोप मढ़ता रहा कि यह सब ध्यान भटकाने या रियायतें मांगने के लिए हो रहा है। इससे भरोसे की परत ऐसी पिघलती गई कि नेक इरादों के साथ की जाने वाली कोई सार्थक पहल भी विफल होने के लिए अभिशप्त सी हो गई है।

इस्लामाबाद वार्ता की विफलता के गंभीर तात्कालिक एवं दूरगामी परिणामों की आशंका बढ़ गई है। अभी जो लड़ाई थमी हुई दिख रही है, वह आने वाले दिनों में और भयावह रूप ले सकती है। इसके आर्थिक परिणाम भी बहुत घातक हो सकते हैं। वैश्विक ऊर्जा बाजार में एक अहम किरदार होर्मुज जलमार्ग में गतिरोध से वैश्विक आर्थिकी की सेहत बिगड़ सकती है। इससे जहाजों से ढुलाई महंगी होने के साथ ही तेल की कीमतें भी बढ़ेंगी और महंगाई का दबाव भी असर दिखाएगा। पहले से ही नाजुक दौर से गुजर रही वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए यह और बड़ा झटका होगा।

वार्ता की विफलता ईरान के राजनीतिक एवं रणनीतिक भविष्य को भी नया आकार दे सकती है। प्रतिबंधों से राहत न मिलना ईरान की आर्थिक चुनौतियों को और बढ़ाएगा, जिससे घरेलू स्थिरता बनाए रखने की मौजूदा शासन की क्षमताओं पर भारी दबाव पड़ेगा। यह कूटनीतिक विफलता ईरान में कट्टरपंथी ताकतों को और मजबूत कर सकती है जो यह दलील दोहराएंगे कि पश्चिम के साथ जुड़ाव से कोई वास्तविक लाभ संभव नहीं। यह स्थिति ईरान में टकराव बढ़ाने का काम करेगी, जिसमें उसकी परमाणु क्षमताओं को लेकर प्रयास बढ़ेंगे और अंतरराष्ट्रीय निगरानी तंत्र के साथ सहयोग घटेगा। क्षेत्रीय स्तर पर भी इसके गहरे निहितार्थ होंगे। इसमें यह आशंका है कि हिजबुल्ला सरीखे नए सहयोगी संगठन संघर्ष में उतरकर अस्थिरता एवं अशांति का भौगोलिक दायरा बढ़ा सकते हैं। कुल मिलाकर, इस्लामाबाद वार्ता की विफलता वही पुरानी परिपाटी को ही दोहराती है कि जहां कूटनीति टकराव को बढ़ाने वाले पहलुओं के साथ तालमेल नहीं बिठा पाती।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 13-04-26

तेजी से बदलती दुनिया में भारत के पास अवसर

शेखर गुप्ता

इस समय दुनिया तमाम युद्धों, बदलते और टूटते गठबंधनों और कठोर शक्ति की वापसी के बीच इस कदर उलझी हुई है कि यह भारत के लिए एक अवसर बन गया है। भारत को अपने भीतर झांककर देखना चाहिए। यह संकट एक और ऐसा अवसर है जिसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए।

दरअसल इन महाशक्तियों और आक्रामक पड़ोसियों की व्यस्तताओं के बीच भारत को एक ऐसा अवसर मिला है जिसकी शायद उसे प्रतीक्षा होगी। एक ऐसा अवसर जहां वह अपनी कुछ अहम कमजोरियों को दूर करने की दिशा में प्रयास कर सके, अपना बचाव तैयार कर सके और खुद को आगामी संकट से बचने के लिए तैयार कर सके।

इसका यह मतलब भी है कि भारत इतना अनुशासित रहे कि ऐसे समय में अचानक हड़बड़ी में कोई प्रतिक्रिया न दे बैठे जिसे पाकिस्तान अपने मौके रूप में देख रहा है। उसे इस मौके को भुनाने देना चाहिए। इस बीच हमें कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना चाहिए। याद कीजिए कि हमने जनवरी में अपने इसी स्तंभ में 'पाकिस्तान से आजादी' की बात कही थी। इसलिए हमें उससे आगे निकलकर यह सोचना चाहिए कि पश्चिम एशिया में शांति हमारे लिए अच्छी है फिर चाहे वह किसी तरह आए।

सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि दुनिया के विचलित होने का क्या अर्थ है। पाकिस्तान शांति की स्थापना करने वाला देश बनने का आनंद ले रहा है। कोई गारंटी नहीं है, लेकिन यह बहुत मुश्किल है कि वह निकट भविष्य में हमारे साथ किसी किस्म का दुस्साहस करे।

अपने रिकॉर्ड को देखते हुए, वह इस नए अवसर को निभाने की कोशिश करेगा और फिर आर्थिक और सैन्य सहायता में इसका पूरा लाभ उठाएगा। उसके पास स्वयं बहुत अधिक खरीदने के लिए धन नहीं होगा, लेकिन संभवतः वह सऊदी अरब, यहां तक कि कतर से धन की तलाश करेगा जबकि अमेरिकी फिर से बिक्री शुरू करेंगे। बहरहाल, इन चीजों में समय लगता है।

डॉनल्ड ट्रंप को अपने ईरान अभियान को शांति और किसी विश्वसनीय विजय दावे के साथ समाप्त करने का रास्ता खोजना होगा। इजरायल अपने युद्धोत्तर रणनीतिक कदमों का पुनर्मूल्यांकन कर रहा है। अरब की खाड़ी के देश मित्र और शत्रु की परिभाषा को फिर से तय कर रहे हैं। हमारा नया मित्र यूरोप और सबसे पुराना साझेदार रूस अपने तात्कालिक पड़ोस पर नई दृष्टि डाल रहे हैं।

दूसरी आक्रामक शक्ति यानी चीन, चुपचाप देख रहा है जबकि बड़ी ताकत खुद उलझ रही है और उसे उबरने के लिए चीन के संरक्षण की आवश्यकता है। नेपोलियन जैसे सिद्धांत का पालन करते हुए, चीन न केवल दुश्मन (अमेरिका) को गलती करते समय बाधित नहीं करेगा, बल्कि वह युद्धग्रस्त पश्चिम एशिया, विशेषकर ईरान से लाभ उठाने की तैयारी भी करेगा। यदि शांति आती है तो पुनर्निर्माण में सैकड़ों अरब डॉलर लगेंगे। ठेकेदारों की सेनाएं क्षेत्र में उतरेंगी, जिससे निर्माण क्रेनों की वैश्विक कमी हो जाएगी। चीनी चाहते हैं कि इनमें से अधिकांश उनके पास हों। वे उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं। भारत के साथ नई परेशानियां फिलहाल उनकी प्राथमिकता नहीं होंगी। यह हमारे विरोधियों का हिसाब करता है।

करीबी दोस्त, संभावित साझेदार और प्रतिद्वंद्वी सभी उलझे हुए हैं और ऐसे में भारत उस दौर से गुजर रहा है जहां वह अपनी ताकत में शांति के साथ इजाफा कर सकता है। मैं आशावादी होने का जोखिम उठाऊंगा।

आजादी के बाद से ही हमें औसतन हर पांच साल में सुरक्षा के क्षेत्र में बड़े खतरे का सामना करना पड़ा है। इसकी शुरुआत जम्मू-कश्मीर में दो सीजन तक चले युद्ध से हुई, इसके बाद गोवा का मामला आया जहां नाटो के अनुच्छेद 5 की आड़ लेकर पुर्तगाल जमा हुआ था, 1961 में गोवा को आजादी मिली, फिर 1962, 1965 और 1971 में चीन और पास्तिान के साथ युद्ध हुए। 1967 में नाथुला में तगड़ी झड़प हुई। यानी 24 साल में 5 बार हमें सैन्य चुनौती का सामना करना पड़ा।

पाकिस्तान की हार और उसके विभाजन ने कुछ राहत दी लेकिन 1986 के बाद से सामरिक चुनौती बार-बार सामने आने लगी है। 1986-87 में चीन के साथ वांगडुंग/समदोरोंग चू, ऑपरेशन ब्रास्टैक्स, 1990 में कश्मीर में पाकिस्तान से युद्ध का खतरा और पहली परमाणु चेतावनी इसमें शामिल रहे।

उसके बाद भी यह सिलसिला जारी रहा। 1999 में करगिल, 2001 में संसद पर हमला और ऑपरेशन पराक्रम, 2008 में 26/11 के हमले और फिर उड़ी, पुलवामा, पहलगाम आदि। इस बीच चीन ने भी कम से कम तीन बार तनाव बढ़ाने का काम किया। 2009 में दलाई लामा की अरुणाचल यात्रा को लेकर और 2013-14 में देपसांग और चुमार में। इसके बाद पूर्वी लद्दाख में सैन्य गतिरोध पैदा हुआ जिसे अब शांत तो कर दिया गया है मगर सुलझाया नहीं गया है। मामूली गणित भी बता देगा कि हर पांच साल पर संकट का सामना करना पड़ा।

हमने ऊपर जिन भटकावों की बात की उन्होंने पांच-पांच साल वाले अमन के दौर भी आरंभ किए। मैं अभी भी पांच साल की अवधि पर इसलिए टिका हूं क्योंकि 2030 में आसिम मुनीर की सेवा विस्तार अवधि समाप्त होगी। उस वक्त वह केवल 62 साल के होंगे। यही वह उम्र है जब भारत के सशस्त्र बलों के प्रमुख सामान्य तौर पर सेवानिवृत्त होते हैं। उस समय तक वह चार भारतीय सेना अध्यक्षों का कार्यकाल देख चुके होंगे।

पाकिस्तान या दुनिया के अन्य स्थानों के तानाशाहों के बारे में हम यह जानते हैं कि उनकी कोई सेवानिवृत्ति योजना नहीं होती। ऐसे में पाकिस्तानी फील्डमार्शल भला 62 साल की उम्र में क्यों सेवानिवृत्त होने लगे? पाकिस्तान की दशा और दिशा को देखते हुए उस समय तक उनके बहुत अलोकप्रिय हो जाने की उम्मीद है। पाकिस्तानी तानाशाहों के पास इसका एक ही हल है, भारत के साथ युद्ध जैसे हालात बनाना। यही वजह है कि हमने अपने आशावाद को पांच सालों तक सीमित रखा है।

चीन देख रहा है कि ट्रंप अमेरिका को कमजोर कर रहे हैं, अपने गठबंधनों को तोड़ रहे हैं और विभाजित अमेरिका में उत्तराधिकारी अपना रास्ता बना रहा है तब चीन को भी इस अवधि की जरूरत होगी। चीन को भी अपने कथित खोए हुए क्षेत्र को वापस हासिल करने के पुराने सपने को साकार करने लायक मजबूती का एहसास हासिल करने के लिए पांच साल की जरूरत होगी। उस सपने में ताइवान, साउथ चाइना के द्वीप और शायद हिमालय भी शामिल हैं। अगर यह आशावादी पाठ सही साबित होता है और भारत को ये पांच साल मिल जाते हैं तो वह इन पांच वर्षों का क्या करेगा? हमने जो आत्मावलोकन की बात कही उसका क्या आशय है?

ट्रंप की कारोबार के क्षेत्र में जबरदस्ती, ऑपरेशन सिंदूर में रक्षा आधुनिकीकरण संबंधी कमियां और खाड़ी युद्ध ने भारत की पांच अहम कमजोरियों को उजागर किया। ये हैं: सैन्य आधुनिकीकरण, ऊर्जा निर्भरता, अंतरिक्ष अभियानों की कमजोरी, उर्वरक और महत्त्वपूर्ण खनिज क्षेत्र। इनसे पांच साल में नहीं निपटा जा सकता है लेकिन कमियों को दूर करने की कोशिश की जा सकती है।

सैन्य मोर्चे पर कुछ बदलाव आया है लेकिन ऑपरेशन सिंदूर के एक साल बाद अभी भी हम काम कम बातें अधिक कर रहे हैं। बदलाव की गति तेज होनी चाहिए। ऊर्जा चुनौती अधिक जटिल है। नए खनन क्षेत्रों से परिणाम हासिल होने में ज्यादा समय लगेगा।

भारत को नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ना होगा। इसमें सार्वजनिक और निजी परिवहन के लिए विद्युतीकरण, एथनॉल मिश्रण (गन्ने या धान की बजाय मक्का से), कोयला गैसीकरण और सामान्य खनन आदि शामिल हैं। कोयले से प्राप्त सिंथेटिक गैस का पहला उत्पादन उर्वरकों को आवंटित किया जाना चाहिए। खनन के क्षेत्र में हम काफी समय से पिछड़े हुए हैं।

नया कानून है, सुधार के लिए बहुत प्रयास हो रहे हैं, लेकिन सरकार और सार्वजनिक उपक्रमों की छाया और भारी हस्तक्षेप इस महत्वपूर्ण क्षेत्र को स्वतंत्र नहीं कर पाते। इसका नवीनतम उदाहरण है एक जिला खनन अधिकारी द्वारा टाटा समूह पर 'अधिक खनन' के लिए 1,755 करोड़ रुपये का नोटिस जारी करना। साल 2001 से 2006 के बीच 'अपराध' यह अपराध हुआ। यह सर्वोच्च न्यायालय के एक खामी भरे आदेश से निकला था। लेकिन विधायिका को इसे ठीक करना चाहिए।

इस तरह आप उन रणनीतिक निर्भरताओं का समाधान नहीं कर सकते जिन्होंने आपको पिछले कई महीनों में इतना असुरक्षित और असहाय बना दिया। यहां नई संभावनाएं मौजूद हैं क्योंकि सशस्त्र माओवाद के अंत ने खनिज-समृद्ध मध्य-पूर्वी भारत को मुक्त कर दिया है।

अंततः, हमारे अपने अनुभवों से एक महत्त्वपूर्ण सबक है। भारत ने कश्मीर में मानवाधिकारों पर पश्चिमी चुनौती (1994), पोकरण-2 (1998) प्रतिबंध और करगिल को पहले की तुलना में कहीं बेहतर तरीके से क्यों संभाला? क्योंकि हमने 1991 में अपनी अर्थव्यवस्था में सुधार किया और हमें एक उभरती शक्ति के रूप में देखा गया। एक बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था हमारे लिए सबसे बड़ी रणनीतिक प्रतिरोधक है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 13-04-26

ईरान को नहीं मना पाया अमेरिका

अरविंद गुप्ता, (पूर्व राजनयिक एवं डायरेक्टर, वीआईएफ)

अविश्वास के माहौल में हुई बातचीत का यही हश्र होता है। अमेरिका-ईरान वार्ता पर बेशक दुनिया की निगाह बनी हुई थी, लेकिन इन दोनों देशों में जिस तरह के गहरे मतभेद हैं, उनको देखते हुए महज एक बैठक में सहमति बनने की संभावना भी नहीं थी। इस्लामाबाद में यही हुआ है। नतीजतन, वार्ता बेनतीजा रही।

प्रश्न अब कई हैं। क्या अमेरिका फिर से हमला बोलेगा या कूटनीतिज्ञों को मौका दिया जाएगा? क्या दोनों पक्षों ने इस युद्ध से सबक सीख लिया या बेमतलब हिंसा का सिलसिला फिर से शुरू हो जाएगा? सवाल यह भी है कि क्या अब राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप इजरायली प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू की सलाह पर गौर करेंगे या अमेरिकी राष्ट्रपति के फैसले में नेतन्याहू बेमानी साबित हो जाएंगे? पाकिस्तान क्या आने वाले दिनों में अपने लिए 'फोटो ऑप्स' के मौके अधिक पाएगा या नेपथ्य में चला जाएगा?

जाहिर है, इन तमाम सवालों के जवाब अगले कुछ दिनों में हमें मिलेंगे, पर कुछ तस्वीर बिल्कुल साफ दिख रही है। बेशक, वार्ता के अगले दौर को लेकर फिलहाल स्पष्टता नहीं है, पर तेहरान ने इस कवायद को 'विफल' बता दिया है, जबकि अमेरिका ने ईरान को 'बेस्ट ऑफर' (बेहतरीन प्रस्ताव) देने की बात कही है। इस्लामाबाद से उड़ान भरने से पहले उप-राष्ट्रपति जेडी वेंस ने पत्रकारों से यही कहा कि अमेरिकी प्रस्ताव को मानना या न मानना अब तेहरान पर निर्भर है, जिसका अर्थ है कि बातचीत के दरवाजे अब भी खुले हैं। खबर तो यह भी है कि दोनों देशों की टीमें अब भी इस्लामाबाद में टिकी हुई हैं, जिससे लगता है कि दोनों पक्ष वार्ता जारी रखने के हिमायती हैं।

खबरों की मानें, तो इस बातचीत में अमेरिका ईरान से यह वायदा मांग रहा था कि वह अपना परमाणु कार्यक्रम फिर से शुरू नहीं करेगा, जबकि तेहरान ने कई दूसरे मुद्दे भी उठाए। परमाणु कार्यक्रम के अलावा, तेहरान होर्मुज पर अधिकार, युद्ध का मुआवजा, भविष्य में हर तरह के हमले से सुरक्षा और प्रतिबंधों का अंत चाहता है। जाहिर है, ईरान की तरफ से एक व्यापक मसौदा पेश किया गया, जबकि अमेरिका के लिए मुख्य मुद्दा परमाणु ही था। हालांकि, आधिकारिक बयान आने से पहले यह कहना कठिन है कि बैठक में कौन-कौन से मुद्दे उठे हैं, मगर चूंकि युद्ध-विराम पर सहमति है और वार्ता के लिए दोनों देश बैठे, इसलिए उम्मीद यही है कि आपसी सहमति के सूत्र जरूर निकलेंगे।

यही कारण है कि हाल-फिलहाल या कम-से-कम युद्ध-विराम तक संघर्ष शुरू होने की आशंका नहीं है। हां, भविष्य में क्या होगा, यह कहना आसान नहीं है, क्योंकि राष्ट्रपति ट्रंप अप्रत्याशित कदम उठाते रहे हैं। पश्चिम एशिया में शांति की राह कैसे और कहां से बनती है, यह तो भविष्य में पता लगेगा, लेकिन जो कूटनीतिक कदम अभी उठाए गए हैं, उन पर फिलहाल भरोसा किया जाता रहेगा।

वाशिंगटन की भूल बस यह है कि वह दबाव बनाकर तेहरान से अपनी शर्तें मनवाना चाहता है। इस युद्ध में भले ही ईरान को भारी क्षति पहुंची है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह हार गया है या टूट गया है। उसके पास होर्मुज जलमार्ग का ऐसा 'ट्रंप कार्ड' (तुरुप का पत्ता) है, जिसका तोड़ खुद राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप भी नहीं निकाल पाए हैं। यहां तक कि इस जलडमरूमध्य को जबरन खुलवाने की उनकी कोशिश भी पूरी तरह धराशायी हो गई। फिर, खाड़ी के देशों में तेल और गैस से जुड़े बुनियादी ढांचों को ईरान ने इस कदर नुकसान पहुंचाया है कि उसकी ताकत का लोहा पूरा क्षेत्र मानने लगा है। वह इस युद्ध में एक बड़ी क्षेत्रीय ताकत बनकर उभरा है, जिससे उसके आत्मविश्वास में काफी बढ़ोतरी हुई है। यही उसके लिए जीत है। इस युद्ध-विराम के दरम्यान वह अपने सुरक्षा ढांचे को फिर से खड़ा कर सकता है। इसलिए भी, वार्ता की मेज पर वह खुद को हारा हुआ खिलाड़ी नहीं समझ रहा।

उधर, अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप भी खुद को इस जंग का विजेता मान रहे हैं। उन्होंने ईरान की नौसेना और परमाणु ढांचे को खत्म करने का बार-बार दावा किया है। यहां तक कि इस्लामाबाद वार्ता के संदर्भ में भी उन्होंने यही कहा कि समझौता

होने या न होने से उनको कोई फर्क नहीं पड़ेगा, क्योंकि अमेरिका इस युद्ध को जीत चुका है। मगर इजरायल की चिंताओं को दरगुजर करना उनके लिए कठिन हो सकता है।

कहा जा रहा है कि इजरायल के लिए सबसे बड़ा मसला ईरान को 'परमाणु हथियार बनाने से रोकना' है। किंतु इसे समझने के लिए कुछ घटनाक्रमों पर गौर कीजिए। पहला, ईरान के सुप्रीम लीडर ने पूर्व में यह स्पष्ट कर दिया है कि वह परमाणु हथियार नहीं बनाएंगे, लेकिन यूरेनियम संवर्द्धन से अपने हाथ पीछे नहीं खीचेंगे। दूसरा, अमेरिका पहले ही यह दावा कर चुका है कि उसने ईरान के परमाणु ढांचे नष्ट कर दिया है। तीसरा, जब तेहरान से समझौता बस होने को था, तभी इजरायल की शह पर फरवरी में अमेरिका ने ईरान पर हमला बोल दिया था, और चौथा, उप-राष्ट्रपति वेंस अब कह रहे हैं कि भविष्य में भी परमाणु हथियार न बनाने को लेकर ईरान अपनी प्रतिबद्धता दिखाए, तभी वार्ता सफल हो सकेगी। इन तमाम बातों का निहितार्थ यही है कि परमाणु मुद्दा महज एक 'मुखौटा' है। वास्तव में, इजरायल नहीं चाहता कि ईरान के साथ किसी तरह का समझौता हो।

ईरान इस पैंतरेबाजी को बखूबी समझ रहा है। वह यह भी मानता है कि यदि जंग फिर से शुरू हुई, तो अमेरिका के पास इतनी सैन्य ताकत है कि वह उसे और नुकसान पहुंचा सकता है। मगर इससे क्या ईरान झुक जाएगा? इसकी संभावना नहीं के बराबर है। तेहरान फिलहाल किसी तरह के दबाव में नहीं है।

इस सूरतेहाल में होर्मुज और खाड़ी के उन ऊर्जा ढांचों का महत्व बढ़ जाता है, जो इस युद्ध की भेंट चढ़ गए हैं। इन्फ्रास्ट्रक्चर को खड़ा करने में वक्त लगता है, इसलिए इन ऊर्जा केंद्रों से तेल-गैस के उत्पादन में अभी समय लगेगा, लेकिन होर्मुज खुलने से न सिर्फ तनाव कम हो सकता है, बल्कि तेल-गैस की कीमतें भी कम हो सकती हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए राहत की बात यही होगी। रही बात मध्यस्थता की, तो फिलहाल पाकिस्तान इसमें शामिल जरूर है, लेकिन भविष्य में उसकी भूमिका काफी हद तक अमेरिका और ईरान के रुख से ही तय होगी।

Date: 13-04-26

हमारी अर्थव्यवस्था की कठिन परीक्षा ले रहा यह युद्ध

आलोक जोशी, (वरिष्ठ पत्रकार)

अमेरिका-ईरान की वार्ता के बेनतीजा निकलने से एक बार फिर दुनिया उसी मुहाने पर आ खड़ी हुई, जहां वह 8 अप्रैल से पहले थी। इन दोनों में से एक ने भी अस्थायी युद्ध-विराम का पालन नहीं किया, तो आग फिर से भड़क सकती है। नतीजा क्या होगा इसका, नमूना पूरी दुनिया देख चुकी है। मुमकिन है कि दोनों ही पक्ष युद्ध-विराम की शर्तों को अपने पक्ष में करवाने के लिए दबाव बनाते रहें, लेकिन युद्ध की तरफ शायद तय अवधि तक न लौटें। हालांकि, इस परिस्थिति में भी दुनिया को इस युद्ध की कीमत

लंबे समय तक चुकानी पड़ेगी और जब कीमत चुकाने का सवाल उठता है, तो फिर सबको अपना-अपना हिसाब भी लगाना होगा।

भारत के लिए यह बहुत ही बड़ा सवाल है। होर्मुज जलमार्ग के बंद होने के कारण तेल-गैस की महंगाई का असर तो जगजाहिर है, पर पश्चिम एशिया के देशों से व्यापार ठप होना, परिवहन की लागत बढ़ जाना, रुपये में कमजोरी से चालू खाते पर दबाव, निर्यात के रास्ते में अड़चनें और ईरान व अरब देशों में बसे भारतीयों से आने वाले पैसे (रेमिटेंस) में कमी भी अर्थव्यवस्था के लिए बुरी खबर है। साफ दिख रहा है कि युद्ध-विराम के एलान के बाद भी होर्मुज से जहाजों का आना-जाना हाल-फिलहाल में सामान्य नहीं हो सकेगा। जहां रोज 140 जहाज आर-पार होते थे, वहां युद्धविराम के शुरुआती दो दिनों में गिनती सात के आंकड़े पर अटकी थी। इसीलिए भारत की नजर से सबसे बड़ा सवाल यही है कि तेल और गैस की आपूर्ति कितनी जल्दी पटरी पर लौटती है। अगर होर्मुज का रास्ता अटका रहा, तब तो युद्धविराम के बावजूद नुकसान का मीटर चलता रहेगा।

परेशानी कितनी बड़ी हो सकती है, इसका अंदाजा लगाने के लिए यह समझना चाहिए कि इस युद्ध से प्रभावित इलाके, यानी पश्चिम एशिया से भारत का कितना लेन-देन है? ताजा अनुमानों के मुताबिक, भारत की जरूरत का 55 प्रतिशत कच्चा तेल इन्हीं देशों से आता है, भारत के कुल निर्यात का लगभग 17 प्रतिशत हिस्सा यहीं से जाता है और भारत में आने वाली रेमिटेंस का 38 प्रतिशत इसी इलाके से आता है। अगर यह युद्ध-विराम किसी कारण से टूटता है, तो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बड़ा जोखिम होगा। इससे महंगाई और चालू खाते का घाटा बढ़ने का डर है। अनुमान लगाए गए हैं कि अगर वित्त वर्ष 26-27 में तेल का औसत दाम 100 डॉलर प्रति बैरल के आसपास टिक जाता है, तो देश के चालू खाते का घाटा 1.9 से 2 प्रतिशत तक जा सकता है, जबकि मौजूदा अनुमान 0.7 से 0.8 प्रतिशत का है। ऐसे में, भारत की विकास दर गिरकर 6.6 प्रतिशत रह सकती है, जबकि महंगाई 4.1 प्रतिशत पर रहने का अनुमान है।

यदि तेल का औसत दाम 130 डॉलर प्रति बैरल तक पहुंच गया, तो हालात काफी बदल जाएंगे। अभी पिछले हफ्ते ही रिजर्व बैंक ने चालू वित्त वर्ष के लिए 6.9 प्रतिशत वृद्धि और 4.6 प्रतिशत औसत महंगाई का अनुमान दिया है, लेकिन यह अनुमान इस धारणा पर टिका है कि कच्चे तेल का औसत मूल्य 85 डॉलर प्रति बैरल के आसपास रहेगा। रिजर्व बैंक के अनुसार, यदि तेल कीमतें इस धारणा से 10 प्रतिशत ऊपर जाती हैं, तो महंगाई में लगभग आधा प्रतिशत और वृद्धि दर में 0.15 प्रतिशत की चोट लग सकती है। विश्व बैंक कुछ और सतर्क है। उसका कहना है कि वित्त वर्ष 26-27 में भारत की जीडीपी 6.6 प्रतिशत रह सकती है। हालांकि, उसका अनुमान है कि अगर तेल-गैस की आपूर्ति और इनके दाम सामान्य हो जाएं, तो वित्त वर्ष 2027-28 में भारत की वृद्ध दर 7.2 प्रतिशत तक पहुंच सकती है।

एक बड़ी राहत की बात यह है कि भारत के पास इतनी विदेशी मुद्रा मौजूद है कि 11 महीनों के आयात का इंतजाम हो सकता है। विश्व बैंक ने भी कहा है कि भारत के पास मजबूत मैक्रो बफर है, लेकिन बफर के बावजूद कीमत तो चुकानी पड़ती है। विदेशी निवेशकों ने पिछले कुछ हफ्तों में ही करीब 19 अरब डॉलर बाजार से निकाले, जिसके असर से रुपया डॉलर के सामने रिकॉर्ड स्तर तक गिरा। इस परिस्थिति में सरकार को करना यही चाहिए कि वह देश की ऊर्जा आपूर्ति, राजकोषीय नीति और खर्च के मोर्चे पर ऐसी तैयारी करे, ताकि आगे कोई संकट भारत को विकट स्थिति में न फंसा पाए।